अध्याय-15

आरक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत वर्ष में जाति के आधार पर आरक्षण की व्यवस्था नई नहीं है। प्राचीन काल में अल्प संख्या वाली जाति समुदायों को बहुसंख्य जाति समुदायों के विरुद्ध अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिये आरक्षण की व्यवस्था थी, परन्तु आयोग समतामय समाज बनाने के लिए आरक्षण का पक्षधर है।

वर्तमान हिन्दू समाज की जो रूपरेखा या तस्वीर दिखाई पड़ती है, इसके निर्माण में मुख्यतः मनुस्मृति का महान योगदान है। आरक्षण व्यवस्था की आधार-शिला इस देश के हिन्दू समाज में मनु-स्मृति ग्रंथ के द्वारा रखी गई। आरक्षण व्यवस्था के प्रथम प्रवर्तक आचार्य मनु हैं।

आचार्य मनु ने चातुवर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन करते हुए ब्राह्मणों को सर्वेसर्वा मानकर उनके लिये समाज में सर्वोच्च स्थान आरक्षित कर दिया। सारी मानव जाति में उन्हें शिरोमणि माना है। उन्हें केवल वर्णों में चातुवर्ण शिरोमणि ही नहीं कहा है, बल्कि ब्राह्मणों को भूदेव अर्थात अंतरिक्ष के देवताओं के प्रतिनिधि और सत्ता संपन्न प्राणी माना है। मनु ने यहां तक प्रतिपादित किया है कि इस संसार (भारत) में जो भी संपत्ति और धन-दौलत है, वस्तुतः उसका स्वामी ब्राह्मण है। शेष लोग, जो भी खा पहन रहे हैं, वह सब कुछ ब्राह्मण का दिया ही भोग रहे हैं। ब्राह्मण निष्कलंक है। बड़े से बड़े पाप और दोष के लिये भी उसे मृत्युदंड नहीं दिया जा सकता।

पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना- कराना, दक्षिणा लेना, संस्कृति, विद्या का अध्ययन करना, मंदिर देवताओं देवालयों की पूजा करना व करवाना ब्राह्मणों के लिये आरक्षित कर दिया गया।

प्रजा की रक्षा करना, युद्ध करना, राज्य करने व सत्ता का उपभाग करना क्षत्रियों के लिये आरक्षित कर दिया गया। पशुओं की रक्षा करना, (पालन पोषण) कृषि कार्य व्यापार तथा ब्याज लेने का कार्य वैश्यों के लिये आरक्षित किया गया।

ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीनों की सेवा दासता, गुलामी करना शूद्र का प्रमुख और एक मात्र कर्तव्य निर्धारित किया गया। मनुस्मृति में आरक्षण व्यवस्था का प्रतिपादन करने वाले निम्न दो

श्लोकों की व्याख्या पर ध्यान देना आवश्यक है :-

यदि राजा स्वयं विवादों (मुकदमों) का फैसला न करे तो उस कार्य के देखने को लिए विद्वान ब्राह्मणों को नियुक्त करे।

(मनु. अध्याय 8 श्लोक 9)

व्यवहार देखने (मुकदमा सुनने में शूद्र का निषेध) केवल जाति (ब्राह्मण मात्र होने से अन्य जाति की जीविका करने वाला अथवा (ब्राह्मण में संदेह होने पर भी) अपने आपको ब्राह्मण कहने वाला किसी व्यवहार) (मुकदमें) को सुनने में राजा का धर्म प्रवक्ता (न्यायाधीश) हो सकता है। किन्तु किसी प्रकार ब्राह्मण का कर्म करता हुआ या धर्मात्मा "शूद्र धर्म प्रवक्ता नहीं हो सकता"

-मनु स्मृति अध्याय 8 श्लोक 20

गर्भाधान संस्कार से आरंभ करके अन्त्येष्टि (मरण) संस्कार पर्यन्त वेद मंत्रों के द्वारा पहले से ही विशेष संस्कार का विधान ब्राह्मणों को है। उसी को इस शास्त्र को पढ़ने तथा सुनने का अधिकार है। दूसरे किसी (चण्डाल या शूद्रादि) को नहीं।

-मनु स्मृति अध्याय 2 श्लोक 16

मनु द्वारा प्रतिपादित आरक्षण व्यवस्था सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा प्रशासनिक, असमानता पर आधारित थी। इस व्यवस्था ने हिन्दू समाज की सामाजिक चेतना को अनेक वर्गों में बांट कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया और इसे क्रम परम्परा का रूप दिया। विभाजन की इस प्रक्रिया में जातियां कहलाने वाले वर्गों को केवल जन्म के आधार पर उच्च या निम्न स्थान स्थाई रूप से प्रदान कर दिया। यह व्यवस्था भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में प्रतिपादित समता के सिद्धांत विधि के समक्ष सभी समान होंगे और सभी को विधि का समान आरक्षण उपलब्ध होगा के सर्वथा विपरीत है। मनु द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत चूंकि द्विज जातियों के अनुकूल एवं लाभकारी था, इस कारण इसका पालन कड़ाई से करवाने के प्रयास किए गए। जाति प्रथा ने हिन्दू समाज को ऐसी अनेक पृथक-पृथक जातियों में विभक्त कर दिया जिनके यहां शादी, विवाह खान-पान अपनी ही जाति में होता है और जो सामान्यतः परम्परागत व्यवसाय अपनाती है। जन्म से उनकी जाति निर्धारित होती है और प्रत्येक जाति का अपनी जाति परम्परा में एक निश्चित स्थान होता है।

मनु द्वारा प्रतिपादित आरक्षण अथवा सामाजिक संगठन की उक्त योजना जो 3000 तीन हजार वर्षों से अधिक समय से चली आ रही है, विभिन्न जातियों की उत्पत्ति एवं चतुर्मुखी विकास में

गहरा प्रभाव डाला है। उदाहरण के तौर पर उच्च ज्ञान के एक मान रक्षक के रूप में ब्राह्मणों ने बौद्धिक व्यवसायों के लिए विशेष जन्मजात प्रवृत्ति सहित एक अत्यत संस्कार निष्ठ समुदाय के रूप में विकास किया। इसके विपरीत शूद्र सभी प्रकार के सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से वंचित व्यक्ति बने रहे और उन्होंने एक गंवारू व्यक्तित्व एवं अनाकर्षक विशेषताओं को अपना लिया। रजनी कोठारी की पुस्तक "भारतीय राजनीति में जाति" से लिए गए निम्नलिखित उदाहरण से पता चलेगा कि उच्च जातियों के साथ प्रतियोगिता में निम्न जातियां कैसे उतरती थी जबकि उनकी कहीं बड़ी-बड़ी कमियों को दूर कर दिया गया था। चूंकि ब्राह्मण उच्च शिक्षा संस्थानों, व्यवसायों और नौकरियों में प्रवेश कर चुके थे, इसलिए सभी स्थानों पर उन्होंने अपने गुट बना लिए जिनमें से गैर ब्राह्मण को बाहर रखा गया। 1892 और 1904 के बीच भारतीय विभिन्न सेवाओं में सफलता प्राप्त करने वाले 16 उम्मीदवारों में से 15 ब्राह्मण थे। 1914 में 128 स्थायी जिले मुंसिफों में से 93 ब्राह्मण थे, 1944 में विश्वविद्यालय के 650 पंजीकृत स्थानों में से 452 ब्राह्मण थे।

आरक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतवर्ष में शासकीय नौकरियों में आरक्षण की ब्रिटिश सत्ता समाप्ति के अंतिम चरण में पूरी तरह से स्थापित हो चुकी थी। लेकिन यह नीति शासकीय सेवाओं में सांप्रदायित्व असमानता दूर करके प्रतिनिधित्व प्रदान किये जाने तक ही सीमित थी। इस नीति का उद्देश्य सदियों से उपेक्षित सामाजिक, असमानता से पीड़ित समुदाय को सामाजिक, आर्थिक समानता प्रदान करके कल्याणकारी व समतामय समाज की स्थापना बिल्कुल नहीं था। उच्च वर्णीय हिन्दुओं का शासकीय सेवाओं में प्राप्त वर्चस्व को सर्वप्रथम केंद्र की जनसंख्या को चुनौती मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख एवं आंग्ल भारतीय द्वारा दी गई। उन्होंने मांग की कि अनुपात में अभिजात हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व सरकारी सेवाओं में अत्यधिक है, जबकि मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख एवं आंग्ल भारतीयों का उनकी जनसंख्या के अनुपात में नगण्य है। लेकिन दक्षिण भारत में गैर ब्राह्मण समुदाय जातियों द्वारा शासकीय नौकरियों में ब्राह्मण समुदाय का शासकीय नौकरियों में पूर्ण वर्चस्व के प्रति विद्रोह कर दिया गया और आबादी के अनुपात के अनुसार प्रतिनिधित्व की मांग प्रारंभ कर दी।

दक्षिण भारत में आरक्षण की नीति का समुदाय

ब्रिटिश शासित प्रदेश मद्रास एवं देशी रियासत मैसूर में सन् 1874 में ब्राह्मण जाति की तुलना में गैर ब्राह्मण जातियों का शासकीय नौकरियों में नगण्य प्रतिनिधित्व को ध्यान में रखते हुए, उनके लिए आरक्षण नीति प्रारंभ की गई। सन् 1895 में मैसूर देशी रियासत में पुलिस विभाग में ब्राह्मण मुसलमान एवं अन्य हिन्दू जातियों को जनसंख्या के अनुपात में सरकारी सेवाओं में स्थान आरक्षित किए गए। सन् 1874 में सांप्रदायिक आरक्षण नीति के बावजूद जब भी स्थिति नहीं सुधर

सकी ब्राह्मणों का वर्चस्व अभी भी कायम था। इस कारण मैसूर सरकार ने 1895 में पिछड़े वर्गों के लिए परिपत्र जारी करते हुए सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था की। सन् 1918 में आरक्षण नीति का पुनः परीक्षण शुरू किया गया, फिर भी ब्राह्मणों का वर्चस्व नौकरियों में कायम रहा। इसलिए मैसूर महाराज ने राज्य सेवाओं में गैर ब्राह्मणों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने के लिए उपाय सुझाने हेतु मैसूर के तत्कालीन उच्च न्यायाधीश सर एल. सी. मिलर की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। मिलर समिति ने पिछड़ा वर्ग की परिभाषा, जाति एवं वर्ग के आधार पर किया, तथा उसमें मुसलमानों को भी शामिल किया, जिनका प्रतिनिधित्व सरकारी सेवाओं में नहीं था।

मद्रास सरकार द्वारा 1885 में सहायक अनुदान संहिता बनाकर कदम उठाया गया था, ताकि दलित वर्ग के विद्यार्थियों को विशेष सुविधाएं प्रदान करने हेतु शैक्षणिक संस्थाओं की वित्तीय सहायता को विनियंत्रित किया जा सके। इसके उपरान्त सन् 1929 में मद्रास सरकार ने सरकारी सेवाओं में गैर ब्राह्मणों को अधिकतम प्रतिनिधित्व देने के लिए कदम उठाया। 1927 में इस योजना की पुनरीक्षा की गई और आरक्षण के क्षेत्र का विस्तार किया गया और राज्य की सभी जातियों को पांच वृहद् भागों में बांट दिया गया और वर्ग का निम्नलिखित आधार पर निर्धारण कर दिया।

क्र.	वर्ग का नाम	1947 तक आरक्षित कोटा	1947 में संशोधित कोटा
1.	गैर ब्राह्मण हिन्दू	12 में से 5	14 में से 6
2.	ब्राह्मण	12 में से 2	14 में से 2
3.	अनुसूचित जातियों, दलित वर्ग	12 में से 1	14 में से 2
4.	मुस्लिम	12 में से 2	14 में से 1
5.	एग्लों इंडियन और ईसाई	12 में से 2	14 मे से 1
6.	पिछड़े हिन्दू	सन् 1964 तक कुछ आरक्षण नहीं था।	14 में से 2

महाराजा कोल्हापुर जो कि बंबई प्रेसीडेन्सी में आते थे ने सन् 1895 में राव बहादुर राबिन्स व्यायस्थ प्रभु को अपने राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया था। प्रधानमंत्री ने महाराजा की आज्ञा से गैर ब्राह्मणों के लिए 50 प्रतिशत स्थान शासकीय नौकरियों में 1902 में आरक्षित कर दिया जिससे कोल्हापुर तथा पूना के चित पावन ब्राह्मण राज से बहुत नाराज हो गये और उसको क्षत्रिय मानने से इंकार कर दिया और उनके किसी भी धार्मिक कृत्य में शरीक नहीं होते थे।

सन् 1928 में बंबई सरकार ने पिछड़े वर्गों का पता लगाने के लिए व उनके लिए विशेष प्रावधानों की सिफारिश करने के लिए नि.ओ. एच.वी. स्टोर की अध्यक्षता में एक समिति गठित किया था। उसने 1930 में रिपोर्ट पेश करके "दलित वर्ग" "आदिवासी तथा पर्वतीय जनजाती" एवं "अन्य पिछड़े वर्गों" में वर्गीकृत किया। इस समिति ने तीन वर्गों को शासकीय सेवाओं में आरक्षण देने की सिफारिश थी। उत्तर भारत में पिछड़े वर्गों का कोई भी संगठन न होने से आरक्षण के संबंध में कोई मांग नहीं की गई इस कारण उत्तर भारत की देशी रियासतों व ब्रिटिश सरकार ने पिछड़े वर्ग के लिए कोई भी व्यवस्था नहीं की है।

अखिल भारतीय स्तर पर दलित वर्ग के कल्याण के लिए पृथक व्यवस्था का प्रयास 1919 के मान्टेग्यू चेम्स फोर्ड रीफार्म्स द्वारा किया गया और इन वर्गों को अनेक सरकारी निकायों में प्रथम बार प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया।

भारतीय संवैधानिक प्रतिकारात्मक भेदभाव (Compansatory descrimination) नीति का निर्धारण डॉ. अम्बेडकर द्वारा अछूतों का आर्थिक व सामाजिक उन्नति के लिए, अनवरत मांग का परिणाम है। इस नीति की आधारशिला भारत वर्ष में गांधी जी के पूना पैक्ट के उपरान्त रखी गई। डॉ. अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था पर चोट करते हुए उसे समूल नष्ट करने की मांग की। महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता निवारण पर जोर दिया।

भारतीय अधिनियम 1935 के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों को दिया गया मुख्य लाभ संघीय विधानसभा पालिकाओं तथा प्रांतीय विधानसभाओं में राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्रदान करना था।

सरकारी सेवाओं में दलित वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए भारत सरकार ने 1934 में अनुदेश जारी किये कि इन वर्गों के योग्य उम्मीदवार केवल नियुक्ति के समुचित अवसर से इसलिए वंचित न किए जाएं कि वे खुली प्रतियोगिता में सफल नहीं हो सकते, लेकिन उनके लिए कोई प्रतिशत निर्धारित नहीं किया गया। 1943 में अनुसूचित जातियों के लिए रिक्तियों का $8\frac{1}{3}$ प्रतिशत आरक्षण करने का आदेश दिया गया। जून 1946 में यह आरक्षण $12\frac{1}{2}$ प्रतिशत बढ़ा दिया गया। परन्तु पिछड़ी जन जातियों के लिए कोई आरक्षण नहीं किया गया, क्योंकि उनका शिक्षा का स्तर नगण्य था।

सन् 1944 में शिक्षा मंत्रालय ने अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्तियां

आदि के लिए एक योजना तैयार की गई और इसे 1948 में अनुसूचित जनजातियों के लिए भी लागू की गई।

पिछड़ा वर्ग शब्द का उद्‌गम

पिछड़ा वर्ग शब्द का उद्‌गम 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ है। दीर्घकाल तक "दलित वर्ग" एवं पिछड़ा वर्ग समानार्थी शब्द माने जाते रहे हैं। "दलित वर्ग" से केवल अस्पृश्य जातियों का अर्थ लगाया जाता था। कभी-कभी अपराधी घुमक्कड़ जनजातियां भी अछूतों के अतिरिक्त "दलित वर्ग" में शामिल मानी जाती थी। पिछड़े वर्ग समूहों के लिए बाध्य जातियों के शब्द का भी उपयोग किया गया।

सन् 1916 में भारत की विधान परिषद में "दलित वर्ग" की परिभाषा पर चर्चा हुई थी। अपराधिक एवं घुमक्कड़ जनजातियां मूल जनजातियों तथा अछूत वर्गों को "दलित वर्ग" में शामिल करने का निर्णय लिया गया था। सर हेनरी शार्म ने गंदा व्यवसाय अछूत का साथ अथवा अछूत जातियां जिनका छुआ व जिनकी छाया से ही व्यक्ति अपवित्र हो जाता है और शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक पिछड़े हैं उनको दलित वर्ग में शामिल करने का सुझाव दिया था। कुछ मुस्लिम वर्ग को भी इसमें शामिल करने का उनका सुझाव था।

साउथबारों समिति ने 1919 में (अश्पृश्यता) बाह्य आदिम व मूल जनजातियों एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को दलित वर्ग में शामिल करने का मानदंड प्रतिपादित किया था।

दक्षिण भारत के प्रान्तों में ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य सभी जातिय वर्गों को दलित पिछड़ा वर्ग शामिल माना गया था। सन् 1928 में हट्‌टाक समिति ने पिछड़ा वर्ग की परिभाषा करते हुए रिपोर्ट दी कि वह वर्ग एवं जातियां जो शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग एवं दलित वर्ग आदिम जनजाति, पहाड़ी जनजाति एवं अपराधिक जनजातियां हैं, मानी जायेगी। भारतीय केंद्रीय समिति ने 1929 में पिछड़ा वर्ग की सूची ब्रिटिश भारत में भी मान्य कर दी तथा "दलित वर्ग" शब्द इस समिति ने हटा दिया। दलित वर्ग शब्द को समिति के द्वारा अलग करने से स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार पिछड़े वर्गों एवं समूहों को दलित वर्ग से पूर्णतः भिन्न समझता था।

1930 में बंबई सरकार द्वारा गठित समिति ने अपने रिपोर्ट में पिछड़े वर्गों को तीन वर्गों अर्थात "दलित वर्ग" आदिवासी तथा पर्वतीय जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों में वर्गीकृत किया।

उक्त विवेचना से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय स्तर पर दलित वर्ग एवं पिछड़ा वर्ग की कोई सर्वमान्य परिभाषा निर्धारित नहीं हो सकी थी। प्रत्येक प्रांतीय सरकारें अपने-अपने ढंग से बहस करके व चर्चा के उपरान्त दलित वर्ग एवं पिछड़े वर्गों को परिभाषित करते रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त यह प्रश्न अखिल भारतीय स्तर पर प्रमुख रूप से उठाया गया है कि पिछड़ा वर्ग कौन है।

भारतीय अधिनियम 1935 के अन्तर्गत "दलित वर्ग" के स्थान पर अनुसूचित जाति नाम दिया गया। इसके साथ ही "आदिम जनजाति" के स्थान पर "पिछड़ी जनजाति" नाम दिया गया। स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय संविधान में पिछड़ी जनजाति के लिए अनुसूचित जनजाति शब्द का प्रयोग किया गया। सन् 1947 तक भारतीय अधिनियम 1935 में की गई परिभाषा ही लागू थी। भारतीय गणतन्त्र के संविधान में भी जाति, वंश एवं मूल के आधार पर अनुसूचित जातियों व अनु. जनजातियों को परिभाषित किया गया है।

संविधान सभा में पिछड़ा-वर्ग पर विचार विमर्श :-

तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने 13 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा में नीति संबंधी बयान, भारतीय संविधान में शामिल किये जाने वाले मूलभूत सिद्धांत घोषणा के रूप में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

Clause 5 of the Resolution recited "Wherein shall be guaranteed and secured to all the people of India, Justice, social, economic and political, equality of Status of opportunity and before the law freedom of thought and expression belief, faith, worship, vocation, association and action subject to law and public morality."

Clause - 6 Provided

"Wherein adequate safeguards shall be provided for minorities backward and tribal areas and depressed and other backward classes."

संविधान सभा में पिछड़ा वर्ग पर विचार विमर्श :-

तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने 13 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा में नीति संबंधी बयान, भारतीय संविधान में शामिल किये जाने वाले मूलभूत सिद्धांत घोषणा के रूप में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

संविधान सभा बहस 5860

इस प्रस्ताव को संविधान सभा में विभिन्न वर्गों द्वारा हार्दिक समर्थन प्राप्त हुआ। क्योंकि अल्प संख्या एवं पिछड़े वर्गों के हितों की रक्षार्थ स्पष्ट घोषणा इसमें की गई थी। इस प्रस्ताव के बावजूद मुस्लिम लीग एवं कांग्रेस पार्टी में मुस्लिमों के लिए शासकीय नौकरियों में आरक्षण के प्रश्न पर तीव्र मतभेद थे। मुस्लिम लीग ने भारतीय संविधान में मुसलमानों के लिए शासकीय सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था को शामिल किये जाने की मांग की थी। लेकिन नेहरू जी ने मुस्लिमों के साथ-साथ अन्य अल्पसंख्यक समूहों को शासकीय नौकरियों में आरक्षण देने की मांग का विरोध किया था। श्री नेहरू जी ने भी मुहम्मद अली जिन्ना को पत्र लिखकर इसकी सूचना निम्न शब्दों में की थी।

"The fixing of Muslim share in the state services by statutory enactments necessarily involves the fixing of the shares of other groups and communities. Similarly this would mean a rigid compartment at state structure which will inpede the progress and development."

यद्यपि श्री नेहरू जी ने यह स्पष्ट आश्वासन दिया था कि शासकीय नौकरियों का बंटवारा निष्पक्ष एवं अनुकूल पद्धति से होना चाहिए जिसमें किसी भी वर्ग को शिकायत करने का मौका न मिल सके।

केबिनेट मिशन योजना द्वारा अल्पसंख्यकों को समुचित प्रतिनिधित्व देने के संबंध में सुझावों को ध्यान में रखते हुए संविधान सभा ने मूल अधिकार एवं अल्पसंख्यक विषय पर सुझाव देने हेतु एक अल्पसंख्यक सलाहकार समिति का गठन सरदार वल्लभ भाई की अध्यक्षता में की गई। इस समिति में हिन्दू, मुसलमान, अनु. जाति, सिक्ख, भारतीय, ईसाई, एवं आदिवासी इत्यादि सभी के प्रतिनिधि थे। सिक्ख एवं आंग्ल भारतीयों ने अपने वर्गों के लिए विशेष आरक्षण की मांग शासकीय नौकरियों में की थी। दलित वर्गों के प्रमुख प्रवक्ता डॉ. अम्बेडकर ने अनुसूचित जातियों की सामाजिक व आर्थिक हालत सुधारने, इन वर्गों को शिक्षा शासकीय नौकरियों इत्यादि में विशेष आरक्षण देने की वकालत जोरदार एवं प्रभावशाली ढंग से किया। उन्होंने दलित वर्गों को राजनीतिक आरक्षण देने की मांग की। उन्होंने अनुसूचित जातियों को धार्मिक अल्पसंख्यक निरूपित किया।

मुसलमानों द्वारा संघ एवं राज्य की विधानसभाओं में आरक्षण देने व नौकरियों में आरक्षण देने की मांग नहीं की गई क्योंकि मुस्लिम लीग में संविधान सभा के बहुत से सदस्यों ने भाग नहीं लिया। कांग्रेस भारी बहुमत से विधानसभा में विजयी रही थी। इसलिए वह जो चाहते अपने अनुकूल पास कर सकते थे। सलाहकार समिति के अध्यक्ष सरदार पटेल ने अल्प संख्यकों को किसी भी प्रकार आरक्षण देने

की मांग का विरोध किया, अपनी रिपोर्ट में उन्होंने कहा कि समिति ने यद्यपि अल्पसंख्यकों को शासकीय नौकरियों में आरक्षण देने की नीति को अस्वीकार कर दिया था, फिर भी सुझाव दिया था कि संविधान या अनुच्छेद में केंद्र राज्य सरकारों को इस बात का निर्देश होना चाहिए कि वह देखे कि अल्प संख्यकों को शासकीय नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिलता रहा है या नहीं। समिति सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के हितों की जांच करने, वह किस स्थिति में कार्य करते हैं तथा उनके उत्थान के लिए क्या कदम उठाना चाहिए, इसकी जांच के लिए एक कानूनी आयोग के गठन की व्यवस्था होना चाहिए का सुझाव दिया था।

समिति की प्रमुख मांगें संविधान सभा द्वारा मान ली गई। मुस्लिम लीग का रुख सहयोगात्मक नहीं था, वह अभी भी पृथक निर्वाचन क्षेत्र की मांग कर रहा। 1947 में भारत का विभाजन हो गया। कुछ अल्पसंख्यक समुदायों ने मुस्लिम सिक्ख, ईसाई, इत्यादि के लिए विधायिका एवं शासकीय नौकरियों में आरक्षण देने की व्यवस्था को वापस ले लिया केव अनु. जाति, अनु. जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए विधायिका एवं शासकीय नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था को यथास्थान कायम रखा गया तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए केवल शासकीय नौकरियों में आरक्षण व्यवस्था को कायम रखा।

अन्त में संविधान सभा की चर्चा के उपरान्त जो प्रमुख बात उभर कर सामने आई वह थी, अनु. जाति, अनु. जनजाति को विधायिका एवं शासकीय नौकरियों में आरक्षण प्रदान करने तथा पिछड़े वर्गों को शासकीय नौकरियों में आरक्षण करने की व्यवस्था। इसके लिए डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में सशक्त पैरवी की थी। संविधान सभा विचार विमर्श का विश्लेषण जिसके फलस्वरूप अनुच्छेद 16(4), 46 और 340 शामिल किए गए।

अनुच्छेद 16 (4) जिसे संविधान में समाविष्ट किया गया है। वह संविधान सभा द्वारा प्रारूप में प्रस्तावित अनुच्छेद 10(3) था। इसमें कहा गया है :-

"इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को नियुक्तियां पदों के किसी भी पिछड़े वर्ग के नागरिकों के पक्ष में व्यवस्था करने से नहीं रोकेगी। जिनका राज्य के मतानुसार राज्य के आधीन सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं होता है।"

यह वस्तुतः लोक नियोजक में समान अवसर के सिद्धांत का अपवाद है, जिसका संविधान के इस अनुच्छेद में आश्वासन दिया गया है।

के. एम. मुंशी तथा अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत अनुच्छेद 10 का प्रारूप जिसकी प्रायः यही

शब्दावली है 30 नवम्बर 1948 को संविधान सभा के समक्ष विचाराधीन आया और उसमें संशोधन सुझाए गए। (संविधान सभा में हुई संपूर्ण बहस का विवरण प्रतिवेदन के साथ संलग्न परिशिष्ट में दी गई है।)

सामाजिक न्याय, संविधान और कानून

इस प्रकार विधि द्वारा मानव को मानव से शोषित होने से बचने के प्रयत्न वस्तुतः इस कारण विफल होते थे कि संविधान में संविधान को स्वतन्त्रता के मूल अधिकार को तो मान्यता दी थी। किंतु सबल पक्षकार द्वारा इस स्वतन्त्रता का अनुचित प्रयोग करने के विरुद्ध शोषण से अपनी रक्षा करने के दुर्बल वर्ग को अपनी रक्षा हेतु मूल अधिकार की मान्यता नहीं दी थी। दुर्बल पक्षकार के इस मूल अधिकार का प्रवर्तन न्यायालयों द्वारा न्यायिक कार्यवाही से नहीं किया जा सकता।

इसका प्रवर्तन तो विधायिका और कार्यपालिका द्वारा अधिनियम बनाकर तथा तदनुकूल प्रशासनिक कार्यवाही से ही किया जा सकता है। इसलिए जब तक दुर्बल पक्षकार के शोषण से अपनी रक्षा करने के मूल अधिकार को मान्यता देकर राज्य पर तत्काल बाध्यताएं न थोपी जाए तब तक सबल पक्षकार के मूल अधिकार के निरंकुश प्रयोग से उत्पन्न होने वाले संतुलन को खोकर कल्याण का सृजन नहीं किया जा सकता है।

सारांश यह है कि एक प्रकार के मूल अधिकारों के आर्थिक दृष्टि से सबल पक्षकारों द्वारा किये जा सकने वाले खुले दुरुपयोगों या अधिक्य को रोकने या अवरुद्ध करने के लिए दुर्बल पक्षकारों के दूसरे प्रकार के मूल अधिकारों को मान्यता देना आवश्यक हुआ। दूसरे शब्दों में संविधान के भाग में अभिलिखित राज्य की नीति के निर्देशक तत्व को संतुलित करने तथा उनके अनुचित या अत्यधिक प्रयोग को रोकने के लिए उन पर निर्बन्धन लगाने के उद्देश्य से हुआ है। राज्य की नीति के निर्देशक तत्व लोकहित की दृष्टि से भाग 3 के मूल अधिकारों पर लगाये गये निर्बन्ध या उनकी सीमा रेखाएं हैं।

सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग एवं समूहों की शिक्षा के क्षेत्र में विशेष सुविधाएं व शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश हेतु आरक्षण तथा शासकीय नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था उनका संविधानिक मूल अधिकार है। जांच व अन्य प्रकार से साबित हो जाने पर की कोई जाति, वर्ग व समूह सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़ा है तथा शिक्षण संस्थाओं में व शासकीय सेवाओं में उनका पर्याप्त **प्रतिनिधित्व** नहीं है तो उसको अनुच्छेद 15 (4) एवं 16 (4) के अनुसार आरक्षण की पात्रता उत्पन्न हो जाती है।